स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्थकता

विनीता गुप्ता*

स्वामी विवेकानन्द युगदृष्टा और युगसृष्टा थे। युगदृष्टा की दृष्टि से उन्होंने अपने समय के अपने देश की स्थिति को देखा, समझा था और युगसृष्टा उस दृष्टि से कि इन्होंने नवभारत की नींव रखी थी। वे भारतीय धर्म दर्शन की व्यवस्था आधुनिक परिप्रेक्ष्य में करने, वेदांत को व्यावहारिक रूप देने एवं उसका प्रचार करने और समाज सेवा एवं समाज सुधार करने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं परंतु इन्होंने शिक्षा की आवश्यकता पर बहुत बल दिया और नवभारत के निर्माण के लिए तत्कालीन शिक्षा में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये।

स्वामी विवेकानन्द ने सैद्धांतिक शिक्षा का खण्डन करते हुए व्यावहारिक शिक्षा पर बल दिया। उनके भाषणों और विचारों में हमें जो राजनीतिक दर्शन मिलता है वह पश्चिम के राजनीतिक चिंतकों से कम नहीं है। वे समझते थे कि धर्म ही आगे चलकर भारत के राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड बनेगा।

विवेकानन्द ने यह उद्घोष किया कि राष्ट्रीय जीवन का धार्मिक उपदेशों के आधार पर संगम किया जाना चाहिए।

> *''मेरे धर्म का सार शक्ति है, जो धर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता, वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है। शक्ति धर्म से भी बड़ी वस्तु है और शक्ति से बढ़कर कुछ नहीं है।''* [1]
>
> – **स्वामी विवेकानन्द**

स्वामी विवेकानन्द जी का जन्म 12 जनवरी, सन् 1863 में एक बंगाली कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता के उच्च न्यायालय में एटर्नी (वकील) थे। इनका वास्तविक नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। उनके घर का वातावरण धार्मिक था, इसलिए स्वामी को भी धर्म-कर्म, पूजा-पाठ में विशेष रुचि थी। नरेंद्र की माँ श्रीमती भुवनेश्वर देवी भी बड़ी बुद्धिमती, गुणवती, धर्मपरायण एवं परोपकारी थीं। वह उन्हें रामायण, महाभारत तथा पुराण सुनाया करती थीं। इन धार्मिक चर्चाओं का उनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और वे बड़े महात्मा बन गये। उनकी महानता, विद्वता एवं धर्मनिष्ठता किसी से भी छिपी नहीं है।

ईश्वर सत्ता को जानने की उनमें ललक थी। एक दिन कवि वर्ड्सवर्थ पर क्लास लेते

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* दाऊ दयाल महिला (पी.जी.) कॉलेज, फ़िरोज़ाबाद।

हुये नरेंद्र के कॉलेज के शिक्षकों ने दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण परमहंस की सिद्धि एवं अलौकिक विषय में विचार-विमर्श किया। उन्होंने जल्दी ही रामकृष्ण परमहंस के दर्शन किये। यहाँ उन्होंने अपना पुराना प्रश्न दोहराया **''क्या आपने ईश्वर को देखा है?''** परमहंस ने कहा **''हाँ, मैंने उसे देखा है।''** फिर नरेंद्र का प्रश्न था, **''क्या आप मुझे ईश्वर के दर्शन करा सकते हैं।''** परमहंस ने मुस्कुराकर कहा- **''हाँ बेटे, मैं तुम्हें अवश्य उसके दर्शन कराऊँगा।''**[2]

इसके बाद नरेन्द्र ने स्वयं को आध्यात्मिक साधनों में लगा दिया। नरेन्द्र की भक्ति और तपस्या उच्च दर्जे की थी, इससे प्रभावित होकर रामकृष्ण ने उसे अपना प्रमुख शिष्य बना लिया। वस्तुतः परमहंस ने अपने संदेश प्रचार के लिए नरेन्द्र को ही माध्यम चुना। सन् 1886 के अगस्त में श्री रामकृष्ण परमहंस का परलोकवास हो गया। नरेन्द्र ने संन्यास धर्म अपनाकर स्वामी के नाम से प्रसिद्धि पाई।

सन् 1893 ई. में विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने वे अमेरिका गये और वहाँ जाने के पूर्व उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द रखा। उन्होने शिक्षा को अपने देश की गरीबी, दरिद्रता एवं दुख का कारण बताया और भारत के नागरिकों की शिक्षा कैसी हो इस पर विचार व्यक्त किया। विदेशों में घूम-घूमकर हिंदू धर्म का प्रचार कर देश एवं स्वयं का नाम कमाया। 4 जुलाई सन् 1902 में यह महात्मा संसार में हिंदु धर्म को फिर से प्रतिष्ठित करके अल्पायु में ही परलोक सिधार गये।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं सिखाता, प्रत्येक व्यक्ति अपने आप ही सीखता है। बाहरी शिक्षक तो केवल सुझाव ही प्रस्तुत करता है, जिसमें भीतरी शिक्षक को समझाने और सीखने की प्रेरणा मिलती है। स्वामी जी ने उस समय की शिक्षा को निरर्थक बताते हुए कहा-

> *''आप उस व्यक्ति को शिक्षित मानते हैं जिसने कुछ परीक्षाएँ पास कर ली हों तथा अच्छे भाषण दे सकता हो। पर वास्तविकता यह है कि जो शिक्षा जनसाधारण को जीवन संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर सकती वो चरित्र-निर्माण नहीं कर सकती, जो चरित्र-निर्माण नहीं कर सकती, जो समाज सेवा की भावना को पैदा नहीं कर सकती तथा जो शेर जैसा साहस पैदा नहीं कर सकती, ऐसी शिक्षा से क्या लाभ है।''* [3]

उनके इस कथन से यह स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रति उनका विस्तृत दृष्टिकोण है। उन्होंनें यह भी बताया है कि भारत को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के पश्चात् यहाँ के नागरिकों को पाश्चात्य विद्वानों का अध्ययन करके तकनीकी शिक्षा की भी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे उद्योग धंधे विकसित हो सकें तथा हमारा देश पुनः धन-धान्य से पूर्ण हो जाए। संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने सैद्धांतिक शिक्षा का खण्डन करते हुए व्यावहारिक शिक्षा पर बल दिया। इस संबंध में उन्होंने भारतीयों को समय-समय पर सचेत करते हुए कहा-

> *''तुमको कार्य के प्रत्येक क्षेत्र को व्यावहारिक बनाना पड़ेगा। संपूर्ण देश का सिद्धांतों के ढेरों ने विनाश कर दिया है।''* [4]

स्वामी विवेकानन्द का राजनीतिक दर्शन

स्वामी जी उस श्रेणी के राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे जिसमें हम हॉब्स, रूसो, ग्रीन या मार्क्स

को समझते हैं। उन्होंने राजनीतिक चिंतन का कोई सम्प्रदाय कायम नहीं किया। राजनीतिक दर्शन के आधारभूत प्रत्ययों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने स्वयं ही कहा था–

''मैं न राजनीतिज्ञ हूँ, न राजनीतिक आंदोलनकारी। मैं केवल आत्म तदव की चिन्ता करता हूँ – जब वह ठीक होगा तो सब काम अपने आप ठीक हो जाएँगे।'' [5]

उनके भाषणों और विचारों में हमें जो राजनीति का दर्शन मिलता है वह पश्चिम के राजनीतिक चिंतकों से कम नहीं है। डॉ. वी.पी. वर्मा के शब्दों में– *''किन्तु आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन के इतिहास में उनका स्थान है। इसके दो कारण हैं– प्रथम, उनकी शिक्षाओं तथा व्यक्तित्व का बंगाल में राष्ट्रवादी आंदोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि प्रधानतः उन्होंने आध्यात्मिक स्वतंत्रता की धारणा का ही संदेश दिया, किंतु उनके इस संदेश का अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक आदि अन्य प्रकार की स्वतंत्रता के विचार भी लोकप्रिय हुये। बंगाल के अनेक आंतकवादियों तथा राष्ट्रवादियों ने उनकी 'संन्यासी का गीत' शीर्षक कविता से स्वतंत्रता के मूल्य तथा पवित्रता का पाठ सीखा। द्वितीय, विवेकानन्द ने हमें भारतीय समाज के विकास के संबंध में कुछ नये विचार दिये हैं।''* [6]

(1) राष्ट्रवाद का धार्मिक सिद्धांत – हीगल की भाँति विवेकानन्द जी का भी विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र का जीवन किसी एक प्रमुख तत्व की अभिव्यक्ति है। उनकी दृष्टि में धर्म भारत के इतिहास में नियामक सिद्धांत रहा है। विवेकानन्द जी के शब्दों में – *''जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वर होता है वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब तत्व उसी में निहित होते हैं। भारत का तत्व है धर्म।* [7]

विवेकानन्द जी समझते थे कि धर्म ही आगे चलकर भारत के राष्ट्रजीवन का मेरुदण्ड बनेगा। राष्ट्र की भावी महानता का निर्माण उसके अतीत की महत्ता की नींव पर ही किया सकता है। अतीत की उपेक्षा करना राष्ट्र के जीवन का ही निषेध करने के समान है। इन्होंने यह भी कहा कि धर्म ने भारत में एकता तथा स्थिरता को बनाये रखने के लिए एक सृजनात्मक शक्ति का काम किया था (यहाँ तक कि जब कभी राजनीतिक सत्ता शिथिल और दुर्बल हो गई तो धर्म ने उसकी पुनः स्थापना में योग दिया। इसलिए विवेकानन्द जी ने यह उद्घोष किया कि राष्ट्रीय जीवन का धार्मिक उपदेशों के आधार पर संगठन किया जाना चाहिए। वे धर्म का अर्थ शाश्वत तत्व का साक्षात्कार करना मानते थे एवं सामाजिक मत-मतांतरों और पुरानी पोंगापंथी रूढ़ियों को धर्म नहीं मानते थे, उनका कहना था कि सभी सुधार धर्म के माध्यम से ही हो सकते हैं।

उनके अनुसार भारत को अपने आध्यात्म से पश्चिम को विजित करना होगा। उनका कहना था, *''एक बार पुनः भारत को विश्व की विजय करनी है। उसे पश्चिम की आध्यात्मिक विजय करनी है।''* [8]

चूँकि विवेकानन्द जी एक संन्यासी थे। अतः वह राजनीतिक विवादों से दूर रहना चाहते थे, क्योंकि यदि राजनीतिक स्वतंत्रता का खुलकर समर्थन करते तो ब्रिटिश सरकार उन्हें कारागार में बंद कर देती जिसका परिणाम यह होता कि उनकी शक्ति व्यर्थ में नष्ट होती और देशवासियों के धार्मिक और नैतिक पुनरूत्थान के कार्य

में विघ्न पड़ता। उन्होंने देशवासियों को कहा– *''बंकिमचंद्र को पढ़ो तथा उनके सनातन धर्म और देशभक्ति को ग्रहण करो'', ''जन्मभूमि की सेवा को अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझा।'' हे वीर! निर्भीक बनो, साहस धारण करो। इस बात पर गर्व करो कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ घोषणा करो, भारतीय मेरा भाई है, भारतीय मेरा जीवन है, भारतीय देवी–देवता मेरे ईश्वर हैं, भारतीय समाज मेरा बाल्यकाल का पालना है, मेरे यौवन का आनंद उद्यान है, पवित्र स्वर्ग और मेरी वृद्धावस्था की वाराणसी है।''*

''मेरे बंधु बोलो भारत की भूमि मेरा परम स्वर्ग है, भारत का कल्याण मेरा कल्याण है –।'' आदि–आदि।[9]

(2) स्वतंत्रता संबंधी धारणा – राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र स्वतंत्रता की धारणा विवेकानन्द जी की प्रमुख देन है। विवेकानन्द जी ने स्वतंत्रता को मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार माना है और यह इच्छा व्यक्त की कि समाज के सभी सदस्यों को यह अवसर समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। संपूर्ण विश्व अपनी अनवरत गति द्वारा मुख्यत: स्वतंत्रता की खोज कर रहा है। उन्होंने कहा– *''जीवन सुख और समृद्धि की एकमात्र शर्त चिंतन है और कार्य की स्वतंत्रता है। जिस क्षेत्र में यह नहीं है उस क्षेत्र में मनुष्य जाति और राष्ट्र का पतन होगा।''* उन्होंने आगे कहा– *''शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होना तथा दूसरों को उनकी ओर अग्रसर होने में सहायता देना मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुस्कार है। जो सामाजिक नियम इस स्वतंत्रता के विकास में बाधा डालते हैं वे हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्र पतन करने के लिए प्रयत्न करने चाहिए। उन संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिनके द्वारा मनुष्य स्वतंत्रता के मार्ग पर आगे बढ़ता है।''*

इन्होंने कहा कि स्वतंत्रता उपनिषदों का मुख्य सिद्धांत था।

(3) शक्ति और निर्भयता पर बल – शक्ति और निर्भयता को राजनीतिशास्त्र की शब्दावली में **''प्रतिरोध का सिद्धांत''** कहा जाता है। विवेकानन्द जी ने भारतवासियों के हृदय में यह भावना भरने की कोशिश की कि बिना शक्ति के हम अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सकते और न अपने अधिकार की रक्षा करने में ही समर्थ हो सकते हैं। उन्होंने इस पर बल दिया कि भारतवासी शक्ति, निर्भीकता और आत्मबल के आधार पर ही विदेशी सत्ता से लोहा ले सकते हैं और अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हैं।

विवेकानन्द जी ने भारतीयों को ललकारते हुए कहा, *''अगर दुनिया में कोई पाप है तो वह है दुर्बलता, दुर्बलता को दूर करो, दुर्बलता पाप है, दुर्बलता मृत्यु है– अब हमारे देश को जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, वे हैं लोह के पुट्ठे, फौलाद की नाड़ियाँ और ऐसी प्रबल मन: शक्ति जिसको रोका न जा सके''*

इन्होंने निर्भयता के सिद्धांत को दार्शनिक वेदांत के आधार पर उचित ठहराया। उन्होंने बार–बार इस बात को दुहराया कि आत्मा ही परमशक्ति है और इसलिए वह सभी प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों से परे है। आत्मा के लक्षण सिंह के समान हैं अत: मनुष्य में भी सिंह की सी भावना का विकास हो। उनके विचार में शक्ति के संदेश का ओजपूर्ण समर्थन करना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का सबसे अच्छा मार्ग है।

(4) व्यक्ति की गरिमा को महत्त्व - राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है अत: सब व्यक्तियों को अपने पुरुषत्व, मानव गरिमा तथा सम्मान की भावना, आदि श्रेष्ठ गुणों का विकास करना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में- *''आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपने अहं का देश और राष्ट्र की आत्मा के साथ तादात्म्य कर दे।''*

इसलिए जब तक व्यक्ति स्वस्थ, नैतिक और दयालु नहीं होते तब तक राष्ट्र की महानता तथा समृद्धि की आशा करना व्यर्थ है। उन्होंने यह भी कहा है कि मनुष्य जितना स्वार्थी होता है उतना ही अनैतिक होता है इसलिए हमें चाहिए कि वीर एवं तेजस्वी युवक जो मृत्यु का आलिंगन करने समुद्र को लाँघने का साहस रखते हों। महान, उद्यम, असीम उत्साह ऐसे गुण हैं जिनके सहारे ही राष्ट्रीय पुनरोत्थान संभव है और जिसकी वर्तमान में आवश्यकता है।

इन्होंने गंभीर स्वर से युवकों को ललकारते हुए कहा-

''उठो, जागो शुभ घड़ी आ गई है। उठो जागो तुम्हारी मातृभूमि तुम्हारा बलिदान चाहती है। उठो जागो, सारा संसार तुम्हारा आह्वान कर रहा है। अपने सुखों को, आनंदों को, अपनी प्रतिष्ठा को, यहाँ तक कि अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दो और मानव आत्माओं का एक ऐसा सेतु बाँध दो जिस पर होकर ये करोड़ों नर-नारी, भव सागर को पार कर जाएँ।''[11]

(5) अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर बल - आधुनिक विश्व में विभिन्न समूहों तथा वर्गों के अधिकारों के समर्थकों के बीच निरंतर संघर्ष चल रहा है। विवेकानन्द जी ने कर्तव्यों को महत्त्व दिया। वे चाहते थे कि सभी व्यक्ति और समूह अपने कर्तव्यों के पालन में ईमानदार हों। मावनप्राणी का गौरव इस बात में है कि वह सार्वभौम शुभ की सिद्धि हेतु अपना उत्सर्ग कर दे। इन्होंने कहा, *''तुम जितना भी अधिक दोगे उतना ही अधिक तुम्हें वापस मिलेगा। जितनी जल्दी इस कमरे को खाली करोगे, उतनी ही जल्दी यह बाहरी हवा से भर जायेगा। यदि तुम सब दरवाज़ खिड़कियाँ बंद कर लोगे तो अंदर की हवा अंदर रहेगी, पर बाहरी हवा कभी अंदर नहीं आयेगी। अंदर ही हवा दूषित, गंदी और विषैली बन जायेगी। नदी खुद समुद्र में लगातार खाली किये जा रही है और वह फिर से भरती आ रही है। नदी से सीखो, समुद्र की ओर गमन बंद मत करो।''*[12]

(6) आदर्श राज्य की धारणा - विवेकानन्द के अनुसार, मानवीय समाज पर चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बारी-बारी से राज्य करते हैं। इन्होंने कहा कि यदि ऐसा राज्य स्थापित करना संभव हो जिसमें ब्राह्मण काल का ज्ञान, क्षत्रिय काल की सभ्यता, वैश्य काल का प्रचार-भाव और शूद्र काल की समानता रखी जा सके तो वह आदर्श राज्य होगा।

(7) अंतर्राष्ट्रीयतावाद एवं विश्व बंधुत्व - स्वामी विवेकानन्द जी के अंतर्राष्ट्रीयतावाद और विश्व बंधुत्व के बारे में शिकागो धर्म संसद के समाप्त होने के बाद कहा गया- *''जहाँ अन्य सब प्रतिनिधि अपने-अपने धर्म के ईश्वर की चर्चा करते रहे, वहाँ केवल विवेकानन्द ने सबके ईश्वर की बात की।''*[13]

इन्होंने एक बार कहा है-

''नि:संदेह मुझे भारत से प्यार है, पर प्रत्येक दिन मेरी दृष्टि अधिक निर्बल होती जाती है।

हमारे लिए भारत या इंग्लैण्ड या अमेरिका क्या है? हम तो ईश्वर के सेवक हैं, जिसे ब्रह्म कहते हैं कि जड़ में पानी देने वाला क्या सारे वृक्ष को नहीं सींचता है।''

विवेकानन्द का सामाजिक चिंतन

एक बार विवेकानन्द जी ने घोषणा की थी, *''मैं इसलिए समाजवादी नहीं हूँ कि वह पूर्ण व्यवस्था है बल्कि इसलिए कि आधी रोटी न कुछ से अच्छी है।''*

डॉ. वी.पी. वर्मा के अनुसार वह दो अर्थों में समाजवादी थे। प्रथम, इसलिए कि उनमें यह समझने की ऐतिहासिक दृष्टि थी कि भारतीय इतिहास में दो अन्य जातियों-ब्राह्मण और क्षत्रियों का आधिपत्य रहा है। उन्होंने खुले तौर पर जातिगत उत्पीड़न की भर्त्सना की एवं मनुष्य और मनुष्य के बीच सामाजिक बंधनों को अस्वीकारा। द्वितीय, इसलिए क्योंकि वे देश के सब निवासियों के लिए समान अवसर के सिद्धांत का समर्थन करते थे।

इनकी रचनाओं में सामाजिक समानता का जो समर्थन देखने को मिलता है वह प्रबल पुरातनवाद तथा ब्राह्मणों की स्मृतियों में व्याप्त सामाजिक ऊँच-नीच के सिद्धांत का सबल प्रतिवाद है।

समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वे हिंसात्मक सामाजिक क्रांति का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे।

स्वामी जी ने स्वयं भारत-भ्रमण के समय अपनी आँखों से भयानक निर्धनता, अज्ञानता, बुभुक्षित नग्न बच्चे, अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुष, निर्धन एवं निरक्षर ग्रामीण, अवैज्ञानिक खेती, सिंचाई के साधनों का अभाव, गाँवों में अस्वच्छता, अत्यंत निम्न जीवन स्तर, धार्मिक आडम्बर, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों आदि के रूप में विपन्न भारत का दर्शन किया। लोग निर्धनता एवं अज्ञानता के कारण पशुवत जीवन व्यतीत कर रहे थे।[14]

इस अमानवीय स्थिति को देखकर मानवीय संवेदना से युक्त स्वामी जी का हृदय अत्यंत द्रवित हुआ। उन्होंने अपने अंतःप्रेरणा से आत्ममुक्ति के स्थान पर राष्ट्रमुक्ति-राष्ट्र को निर्धनता एवं अज्ञानता से मुक्ति दिलाने, दीन-दुखियों के उद्धार हेतु कार्य करने तथा राष्ट्र के पुनर्निर्माण में संलग्न होने का संकल्प किया और आजीवन मानवता की सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया।[15]

(1) अस्पृश्यता का विरोध – विवेकानन्द जी वर्गगत तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों तथा अत्याचार का उन्मूलन करना चाहते थे, जिन्होंने हिंदू समाज को शिथिल, स्तरबद्ध तथा विघटित कर दिया था। उन्होंने भारत में व्याप्त अस्पृश्यता तथा रूढ़िवादिता पर कटु प्रहार किया।

उनके शब्दों में, ''हम उनकी जीविका और उन्नति के लिए क्या कर रहे हैं? हम उन्हें छूते भी नहीं और उनकी संगति से दूर भागते हैं। क्या हम मनुष्य हैं? वे हज़ारों ब्राह्मण भारत की नीच और दलित जनता के लिए क्या कर रहे हैं? ''मत छू'', ''मत छू'' एक ही वाक्य उनके मुख से निकलता है। उनके हाथों हमारा सनातन धर्म कैसा तुच्छ और भ्रष्ट हो गया है। अतः हमारा धर्म किसमें रह गया है? केवल छुआछूत में, और कहीं नहीं।''

(2) बाल-विवाह का विरोध – विवेकानन्द जी ने बाल-विवाह की भर्त्सना की और कहा, *''बाल-विवाह में असामयिक संतानोत्पत्ति होती*

है और अल्पायु में संतान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियाँ अल्पायु होती हैं, उनकी दुर्बल और रोगी संतानें देश में भिखारियों एवं अपराधियों की संख्या बढ़ाने का कारण बनती हैं।''[16]

(3) दलितों का उत्थान – वे जाति प्रथा के विरोधी थे, किंतु एक यथार्थवादी विचारक के रूप में यह भी मानते थे कि उसे समूल नष्ट करना असंभव है। उनका कहना था कि ब्राह्मणों को नीचे गिराने की अपेक्षा यह उचित है कि प्रत्येक को उनके धरातल पर ले आना चाहिए। उच्चतर को निम्नतर के स्तर पर लाने से कोई लाभ नहीं होगा।

(4) आत्मविश्वास पर बल – विवेकानन्द जी ने स्वयं पर विश्वास करने की प्रेरणा दी। आत्मविश्वास रखने पर ही व्यक्ति में कुछ करने की क्षमता विकसित होती है और आत्मविश्वासी समाज ही समस्त बाधाओं को लाँघकर ऊपर उठता है।

विवेकानन्द जी ने कहा– *''लोग कहते हैं - इस पर विश्वास करो, उस पर विश्वास करो, मैं कहता हूँ -पहले अपने आप पर विश्वास करो। अपने पर विश्वास करो। सर्वशक्ति तुम में है- कहो हम सब कर सकते हैं।''*

(5) स्त्रियों को शिक्षा के समान अवसर – स्वामी जी ने नारी उत्थान के लिए स्त्री शिक्षण पर बल देते हुए कहा– *''पहले अपनी स्त्रियों को शिक्षित करो, तब वे आपको बताएँगी कि उनके लिए कौन से सुधार आवश्यक हैं, उनके मामले में बोलने वाले तुम कौन होते हो।''*

स्वामी जी स्त्रियों एवं जनसामान्य विशेषत: दीन दु:खियों, निर्धनों, असहायों एवं समाज के निचले पायदान पर खड़े व्यक्तियों की शिक्षा के प्रति संवेदनशील थे। उनके अनुसार देश के पतन तथा पिछड़ेपन का प्रमुख कारण स्त्रियों की अशिक्षा है। वर्तमान समाज में स्त्रियों को सम्मान प्राप्त नहीं है। उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने के अवसर सुलभ नहीं हैं। परिवार में बालक की शिक्षा के लिए लोग सचेत रहते हैं बालिका के लिए नहीं। समाज स्त्री पुरुष दोनों से मिलकर बना है। दोनों की शिक्षा पर ही देश का पूर्ण विकास संभव है। पक्षी आकाश में एक पंख से नहीं उड़ सकते, उसी प्रकार देश का सम्यक् उत्थान मात्र पुरुषों की शिक्षा से संभव नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर सुलभ होना चाहिए।[17]

(6) व्यवसायिक विकास पर बल – भारत एक निर्धन देश है तथा यहाँ की अधिकांश जनता मुश्किल से ही अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाती है। स्वामी जी ने इस तथ्य एवं सत्य को हृदयंगम किया तथा यह अनुभव किया कि कोरे आध्यात्म से ही जीवन नहीं चल सकता। जीवन चलाने के लिए कर्म अत्यधिक अनिवार्य है। इसके लिए उन्होंने शिक्षा के द्वारा मनुष्य को उत्पादन एवं उद्योग कार्य तथा अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।[18]

विवेकानन्द जी ने सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन का आह्वान किया क्योंकि समाज के सभी सदस्यों को सम्पत्ति, शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिए समान अवसर मिलने चाहिए और घोषणा की कि *''वे सामाजिक नियम जो इस स्वतंत्रता के विकास के आड़े आते हैं, हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्रातिशीघ्र खत्म करने के लिए कदम उठाये जाने चाहिए।''*

निष्कर्ष

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन दर्शन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे देशवासियों की दीन हीन अवस्था को देखकर अत्यंत व्यथित एवं चिंतित थे। केवल शिक्षा ही राजनीतिक एवं सामाजिक बुराइयों को दूर कर सकती है। त्यागी पुरुष सफल शिक्षक बन सकता है क्योंकि ज्ञान का दान किया जा सकता है, उसका विक्रय नहीं, उन्होंने कहा भी था, *''मेरी समस्त भावी आशा उन नवयुवकों में केंद्रित है जो चरित्रवान, बुद्धिमान, आज्ञापालक, लोकसेवा हेतु सर्वस्व त्याग करने वाले हों और जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिए हर प्रकार का उत्सर्ग कर सकें।''* इनके अनुसार *''आत्मा ही चरम स्त्रोत न केवल ज्ञान का और सुख का है वरन् उन सब उच्च गुणों एवं योग्यताओं का है जो मानव में निहित है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की आंतरिक पूर्णता प्रकट होती है।''* [19]

स्वामी विवेकानन्द जी युगदृष्टा और युगसृष्टा थे। युगदृष्ता की दृष्टि से उन्होंने अपने समय के अपने देश की स्थिति को देखा, समझा था और युगसृष्टा उस दृष्टि से कि इन्होंने नवभारत की नींव रखी थी। वे भारतीय धर्म दर्शन की व्यवस्था आधुनिक परिप्रेक्ष्य में करने, वेदांत को व्यावहारिक रूप देने एवं उसके प्रचार करने और समाज सेवा एवं समाज सुधार करने के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं परंतु इन्होंने शिक्षा की आवश्यकता पर बहुत बल दिया और नवभारत के निर्माण के लिए तत्कालीन शिक्षा में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये।

जवाहरलाल नेहरू जी ने भी उनके बारे में एक बार कहा था–

''भारत के अतीत में अटल आस्था रखते हुए और भारत की विरासत पर गर्व करते हुए भी, विवेकानन्द जी का जीवन की समस्याओं के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण था और वे भारत के अतीत तथा वर्तमान के बीच एक प्रकार के संयोजक थे।''[20]

स्वामी जी के संपूर्ण दृष्टिकोण पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे हृदय से आदर्शवादी थे। उन्होंने सर्वप्रथम आध्यात्मिक विकास फिर भौतिक समृद्धि, जीवन की रक्षा तथा अंत में भोजन की समस्या सुलझाने पर बल दिया। इस प्रकार **डा. आर.एस. मनी** के शब्दों में–

''उनके जीवन का लक्ष्य इस बात का प्रचार करना था कि लोगों में श्रद्धा तथा मानसिक वीर्य का विकास हो, वे आत्मा का ज्ञान प्राप्त करें तथा अपने जीवन को दूसरों की भलाई के लिए त्याग दें। यही थी उनकी इच्छा तथा आशीर्वाद।''

अंत में कहा–

''मैं जन–साधारण की अवहेलना करना महान राष्ट्रीय पाप समझता हूँ। यह हमारे पतन का मुख्य कारण है। जब तक भारत की सामान्य जनता को एक बार फिर उपयुक्त शिक्षा, अच्छा भोजन तथा अच्छी सुरक्षा नहीं प्रदान की जायेगी तब तक प्रत्येक राजनीति बेकार सिद्ध होगी।''[21]

हमारे राष्ट्र की आत्मा झुग्गी–झोपड़ियों में निवास करती है। अतः शिक्षा के दीपक को घर–घर ले जाना होगा, तभी तो सारा जन–समाज प्रबुद्ध हो सकेगा। उसे कर्म की भी शिक्षा दी जाये। यही तो वास्तविक जीवन की शिक्षा है। शिक्षा–मंदिर का द्वार सभी व्यक्तियों के लिए

खोल दिया जाये, जिससे कोई भी अनपढ़ न रहे। शिक्षा आज़ाद हो। दृढ़ लगन और कर्म की शिक्षा ही जन-समूह को उचित शिक्षा दिला सकती है।

संदर्भ

1. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक.* साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 143
2. एलैक्स शीलू मैरी. 2008. *शिक्षा दर्शन.* रजत प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 141
3. सक्सैना, एन. आर. स्वरूप, 2009. *शिक्षा दर्शन. एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री.* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 344
4. सक्सैना, एन. आर. स्वरूप. 2009. *शिक्षा दर्शन एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री.* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 344
5. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक*, साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 148
6. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक*, साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 148
7. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक*, साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 148
8. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक,* साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 149
9. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक,* साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 149
10. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक,* साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 150
11. सिंह एवं भार्गव. 2012. *शिक्षा एवं संस्कृति,* 12-ए, राखी प्रकाशन, पृ. 17
12. दैनिक जागरण, *सप्तरंग.* 6 जून 2012, पृ. 4
13. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक.* साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 151
14. स्वामी, निखिलानन्द. 1989. *विवेकानन्द-ए बायोग्राफी,* रामाकृष्णा-विवेकानन्द सेंटर, पृ. 79-56
15. कुमार, भवेश. 2010. 'स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता'. *भारतीय आधुनिक शिक्षा.* जनवरी 2010, वर्ष 30, अंक 3, पृ. 46
16. जैन, पुखराज. 2002. *भारतीय राजनीतिक विचारक.* साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, पृ. 153
17. कुमार, भवेश. 2010. 'स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता'. *भारतीय आधुनिक शिक्षा.* जनवरी 2010, वर्ष 30, अंक 3, पृ. 48
18. शर्मा, आर. ए. 2011. *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार.* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 524
19. माथुर, एस. एस., 2011. *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार.* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 524
20. पाठक एवं त्यागी. 2011. *शिक्षा के सामान्य सिद्धांत. अग्रवाल पब्लिकेशन्स,* पृ. 364, 365
21. सक्सैना, एन. आर. स्वरूप. 2009. *शिक्षादर्शन एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षा शास्त्री.* आर. लाल. बुक डिपो. मेरठ, पृ. 348, 349